International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(3): 19-24

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(3): 19-24
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 14-03-2020
Accepted: 16-04-2020

प्रद्युम्न यादव
शेध छात्र एवं सहायक प्राध्यापक
योग विभाग श्री रावतपुरा सरकार युनिवर्सिटी रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

Corresponding Author:
प्रद्युम्न यादव
शेध छात्र एवं सहायक प्राध्यापक
योग विभाग श्री रावतपुरा सरकार युनिवर्सिटी रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

योगसूत्र में चित्तवृत्तिनिरोध के उपाय

प्रद्युम्न यादव

सारांश
महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योगसूत्र भारतीय यौगिक ग्रथों में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। योगसूत्र का विषय सैद्धान्तिक होने की अपेक्षा व्यावहारिक एवं क्रियात्मक अधिक है। योगसूत्र के अनुसार 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'[1] अर्थात चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। चित्तवृत्तियों के निरोध का फल 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'[2] अर्थात तब दृष्टा (पुरूष) अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है अर्थात जब दृष्टा (पुरूष) को प्रकृति (माया) से पृथक अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब वह अपने स्वरूप में प्रतिष्ठत हो जाता है। यह स्वरूप में प्रतिष्ठा ही कैवल्य या आत्मज्ञान या मोक्ष है। महर्षि पतंजलि ने अपने ग्रंथ योगसूत्र में चित्तवृत्तिनिरोध के तीन साधनों का वर्णन किया है। योगसूत्र में चित्तवृत्तिनिरोध के साधन अर्थात उपाय तीन प्रकार (उत्तम, मध्यम, अधम) के अधिकारीयों के लिए वर्णित किया गया है। साधक अपनी योग्यता के अनुरुप इन में से किसी एक साधन का चयन कर के अपने लक्ष्य कैवल्य या मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

मूलशब्द : योगसूत्र, चित्तवृत्तिनिरोध, कैवल्य, मोक्ष।

प्रस्तावना
सभी यौगिक ग्रथों की तरह योगसूत्र का भी प्रयोजन कैवल्य या मोक्ष प्राप्त करना है। योगसूत्र में कैवल्य या मोक्ष प्राप्ति का अर्थ दृष्टा (पुरूष) का प्रकृति (माया) से पृथक अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर उसमें प्रतिष्ठित होना है। अपने स्वरुप में दृष्टा (पुरूष) का प्रतिष्ठित होना तभी सम्भव है जब उसकी चित्त की वृत्तियों का निरोध हो गया हो। चित्तवृत्तिनिरोध के बिना दृष्टा (पुरूष) का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना सम्भव नही है। योगसूत्र में चित्तवृत्तिनिरोध के साधनों का वर्णन किया है, जिसको अपना कर साधक अपने अंतिम लक्ष कैवल्य या मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

योगसूत्र
योगसूत्र के रचियता महर्षि पतंजलि हैं। महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र की रचना योग को दर्षनिक स्वरूप देने तथा उसके विखरे हुए तत्वों को एक निष्चित स्वरूप देने के उद्देष्य से की है। उनका काल लगभग 200 वर्ष पूर्व या आसपास माना जाता है। पतंजलि संभवतः पुष्यमित्र शंगु (195–142 ई.पू.) के शासनकाल में थे तथा उन्हे इनका राजपुरोहित भी माना जाता है। परन्तु विभिन्न विद्वानों के तत्व ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों के अध्ययन से यह बात सामने आई है कि यागेसूत्र का रचनाकाल ई.पू. चौथी सदी में रहा होगा। डॉ. राधा कृष्णन ने यागेसूत्र का लेखन 300 ई.पू. माना है। प्रो. एस.एन. दासगुप्त ने 'हिस्टी ऑफ इन्डियन फिलासॉफी' में पतंजलि योगसूत्र का लेखन ई.पू. दूसरी सदी में हुआ ऐसा माना है। जैकोबी ने योगसूत्र की रचना पाँचवी सदी मे मानी है। महर्षि पतंजलि का इतिहास जो भी हो, साधक को तत्व ज्ञान से ही आग्रह होना चाहिये न कि ग्रन्थकार के रचनाकाल से। राजा भोज ने इन्हे तन के साथ मन का भी चिकित्सक कहा है।

> यागेने चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
> योऽपाकरोत्तम् प्रवरं मुनीनां पतंजलिं प्रांजलिरानतोऽस्म।।

अर्थात् चित्तषुद्धि के लिए योग (योगसूत्र), वाणीषुद्धि के लिए व्याकरण (महाभाष्य) और शरीरषुद्धि के लिए वैद्यशास्त्र (चरकसंहिता) देने वाले मुनी श्रेष्ठ पंतजलि को प्रणाम है।
योग का आरम्भ एवं इतिहास की चर्चा जब भी की जाती है तो हिरण्यगर्भ का नाम सबसे पहले आता है। विभिन्न षास्त्रो में भी योग के आदि प्रवर्तक हिरण्यगर्भ ही बताये गये हैं –

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।[3]

अर्थात योग के आदिवक्ता या उपदेष्टा आचार्य हिरण्यगर्भ है उनसे पुरातन कोई नही है।
महाभारत में भी हिरण्यगर्भ को ही योग के आदि के रूप में स्वीकार करते हुए कहा गया–

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।।[4]

अर्थात सांख्यषास्त्र के आदिवक्ता परम ऋषि कपिल मुनि हैं, योगषास्त्र के आदिवक्ता आचार्य हिरण्यगर्भ है। हिरण्यगर्भ से प्राचीन अन्य कोई योग के वक्ता नही हैं।

योगसूत्र की संरचना एवं प्रतिपाद्य विषय –
योगसूत्र प्रमुखतः चार पादों में विभक्त है और इसमें कुल 195 सूत्र हैं।
प्रथमपाद – समाधिपाद – 51 सूत्र
द्वितीयपाद – साधनपाद – 55 सूत्र
तृतीयपाद – विभूतिपाद – 55 सूत्र
चतुर्थपाद – कैवल्यपाद – 34 सूत्र

समाधिपाद – प्रथमपाद में योग के लक्षण, स्वरूप, उसकी प्राप्ति के उपायों का वर्णन किया गया है। चित्त की वृत्तियों के पांच भेद तथा उनके लक्षण बतलायें गये हैं और इन वृत्तियों के निरोध के लिए अभ्यास और वैराग्य का वर्णन किया गया है। मुख्यरुप से समाधि के भेद बतलायें गये हैं।

साधनपाद – द्वितीयपाद में अविद्यादि पांच क्लेषो को समस्त दुखों का कारन बताया गया है। अविद्यादि के रहते मनुस्य जो कुछ कर्म करता है, वे सब संस्कार के रुप में अंतः करन में संग्रहित होते रहते हैं। संस्कारों के इस संग्रह को ही कर्माषय कहते हैं। इस कर्माषय को नष्ट करने के साधन के रुप में क्रियायोग एवं अष्टांगयोग का वर्णन किया गया है।

विभूतिपाद – तृतीयपाद में अष्टांगयोग के अन्तरंग साधन की चर्चा की गई है। धारणा, ध्यान और समाधि ये अष्टांगयोग के अन्तरंग साधन हैं। इन तीनों को एकत्रित नाम ''संयम'' बताया गया है। भिन्न–भिन्न ध्येय पदार्थों में संयम का भिन्न–भिन्न फल बतलाया है। मुख्यरुप से विभूति के बारे में बतलाया गया है।

कैवल्यपाद – चतुर्थपाद में कैवल्यपद प्राप्त करने योग्य चित्त के स्वरुप का प्रतिपादन किया गया है। गुणों से सर्वथा अलग होकर अपने स्वरुप में प्रतिष्ठित हो जाना ही पुरुष की कैवल्य स्थिति है, यह बता कर इस ग्रंथ की समाप्ति की गयी है।

चित्त का स्वरूप –
चित्त शब्द 'चित्ति संज्ञाने' धातु से 'क्त' प्रत्यय लगने पर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है ज्ञान अथवा चेतना। योगसूत्र में चार अतःकरण (मन, बुद्धि, अहकांर व चित्त) और दस बाह्य करण (पचं ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ) को विषयों के ज्ञान ग्रहण करने हेतु और प्रतिक्रिया करने का साधन माना गया हैं। इन अंतःकरण और बाह्य करणों के द्वारा विषयों के प्रति जो ज्ञानात्मक परिणाम है वही वृत्ति है। अर्थात् बुद्धि द्वारा निश्चय करना, अहकांर द्वारा अभिमान करना, मन द्वारा संकल्प–विकल्प और चित्त द्वारा संस्कार संग्रह तथा कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण कर क्रिया करना आदि सभी को वृत्ति कहा जा सकता है।
जब चित्त इन्द्रियों के माध्यम से विषयों के सम्पर्क में आता है, तब यह चित्त उस विषय का ही आकार ग्रहण कर लेता है। चित्त के द्वारा विषय के आकार को ग्रहण करने की यह घटना ही चित्त की वृत्ति कहलाती है। ये वृत्तियाँ ही चित्त में संस्कारों का संग्रह करती है और संग्रहित संस्कार ही पुनः वृत्तियों का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार यह चक्र अनवत चलता रहता है। वृत्तियों के व्यावहार को समझने के लिए हम निम्न उदाहरण देख सकते हैं – यदि हम किसी तालाब में कोई पत्थर फेकें तो देखते हैं कि तालाब में उस स्थान से जहाँ पर वह पत्थर जाकर गिरा है, वहाँ से वृत्ताकार लहरें उत्पन्न हो जाती है और ये लहरें किनारे तक जाती है। पुनः यदि कोई पत्थर तालाब में फेंका जाये तो यह लहरे पुनः उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार चित्त एक तालाब है और पत्थर विषय है तथा तालाब में उठने वाली ये लहरें ही वृत्ति है जिन्हें हम चित्त वृत्तियाँ कहते हैं।

योगसूत्र में चित्त की वृत्तियाँ
मनुष्य का चित्त विभिन्न अवस्थाओं या परिस्थितियों में असंख्य पदार्थों के संपर्क में आता रहता है उनके संपर्क से चित्त में असंख्य वृतियां उत्पन्न होती हैं ये ही चित्त की वृत्तियाँ कहलाती हैं। चित्त की वृत्तियाँ संख्या की दृष्टि से असंख्य हैं फिर भी भेद की दृष्टि से इनके दो भेद हैं – क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट। क्लिष्ट अर्थात् कष्ट, पीड़ा, दुःख, बाधा वाली एवं अक्लिष्ट अर्थात क्लेश रहित, कष्ट रहित, दुःख रहित। योगसूत्र में महर्षि पतंजलि ने क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट के भेद से पांच प्रकार की चित्तवृत्तियों का वर्णन किया है। जो इस प्रकार से है – प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति।

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः।[5]

अर्थात प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा व स्मृति ये पाँच वृत्तियाँ हैं।

योगसूत्र में चित्त की भूमियाँ
चित्त की अनेक अवस्थाएँ होती हैं, किन्तु योगसूत्र में चित्त की केवल पाँच अवस्थाओं का ही वर्णन किया गया है। योगसूत्र में चित्त की इन पाँच अवस्थाओं को चित्त की पाँच भूमियाँ कहते हैं। जो निम्न हैं– क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र, निरूद्ध। भूमियाँ शब्द का प्रयोग यहाँ पर स्तर के रूप में किया गया है अर्थात् चित्त जिस स्तर पर रहता है उसे ही यहाँ चित्त की भूमि कहा गया है। चित्त की भूमियों की विशेषता यह है कि प्रत्यके चित्त की भूमि में त्रिगुण सत्व, रज और तम में से किसी एक की प्रधानता होती है और चित्त उस गुण की प्रधानता के अनुरूप ही क्रिया करता है। योगसूत्र भाष्यकार व्यास के अनुसार –

क्षिप्तं मूढ़ विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चितस्थ भूमयः।[6]

अर्थात चित्त की क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरुद्ध ये पाँच भूमियाँ हैं।

योगसूत्र में चित्तवृत्तिनिरोध के उपाय
चित्त में उठने वाली वृत्ति तरंगें ही योग मार्ग की सबसे प्रमुख बाधक है। यदि इन वृत्तियों को नष्ट कर दिया जाये तो योग को प्राप्त किया जा सकता है। महर्षि पतंजलि ने वृत्ति निरोध के उपायों की जानकारी योगसूत्र में दी है। योगसूत्र में महर्षि पतंजलि ने विभिन्न क्षमता वाले साधकों के लिए वृत्ति निरोध के उपाय बतलायें हैं। योगसूत्र में योग के साधकों को उनकी क्षमता के अनुसार तीन श्रेणीयों के अन्तगर्त रखा गया है। प्रथम प्रकार के साधक उत्तम श्रेणी के, दूसरे प्रकार के साधक मध्यम श्रेणी के तथा तीसरे प्रकार के साधक अधम श्रेणी के होते हैं। महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित चित्त वृत्ति निरोध के उपाय उसी प्रकार है जिस प्रकार पहली कक्षा में पढ़ने वाले बच्चे को पाचंवी कक्षा के प्रश्न का उत्तर देने को कहा जाये तो वह उन प्रश्नों को समझ ही नहीं पायेगा। इसी प्रकार अधम श्रेणी के साधक, उत्तम श्रेणी के साधकों के लिए निहित वृत्ति

निरोध के उपायों को व्यवहार में नहीं ला सकते। उन्हें वृत्तियों के निरोध के लिए अपने अनुकूल साधनों का ही चयन करना होगा। तीनों श्रेणी के साधकों के लिए वृत्तिनिरोध के उपाय निम्न हैं –

1. उत्तम श्रेणी के साधक के लिए उपाय (अभ्यास और वैराग्य) – प्रथम प्रकार के साधक उत्तम श्रेणी के साधक होते हैं। उत्तम श्रेणी के साधक वे होते हैं जो पूर्वजन्म से ही योग मार्ग पर बहुत आगे निकल चुके होते हैं और वर्तमान जन्म में पूर्वजन्म में छोड़ी गयी योग साधना को लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं जैसे रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि इसी श्रेणी के योगी है। इन उत्तम श्रेणी के साधकों के लिए अभ्यास और वैराग्य ही चित्त वृत्तियों के निराधे के लिए काफी है। ये योगी मात्र पूर्वजन्म के कर्मो के संग्रहित संस्कारों को भोगने के लिए जीवन–यापन करते हैं। संस्कारों के क्षीण होते ही इन्हें योग के परम् लक्ष्य कैवल्य या मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

अभ्यास – अभ्यास का तात्पर्य बार–बार दुहराने से है। अभ्यास एक साधना है। प्रयत्न की पूर्ण स्थिति को अभ्यास कहते हैं। इस प्रयत्न के अन्तगर्त वह सभी अभ्यास हैं जो कि चित्त वृत्तियों के निरोध में सहायक हैं। अभ्यास के संदर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।[7]

अर्थात उनमें से चित्त की स्थिति के निमित्त यत्न करना अभ्यास है।
अर्थात अभ्यास और वरैाग्य को दृढ बनाने हेतु यत्न करना ही अभ्यास है। अभ्यास करने के लिये निम्न शर्तों का पूर्ण होना अत्यन्त आवश्यक है – पहला है अभ्यास पूरी निष्ठा से किया जाये, दूसरा उसमें निरंतरता हो और तीसरा उसे लम्बे समय तक करते रहना चाहिये। इन्ही शर्तों के संदर्भ में आगे वर्णन आता है कि–

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारसेवितो दृढ़भूमि।[8]

अर्थात वह अभ्यास दीर्घकाल, निरन्तर और अदरपूर्वक सत्कार से सेवित होने पर दृढ़ होता है।

1. दीर्घकाल – अभ्यास के लिए कोई निश्चित अवधि विशेष नहीं है कि कितने समय तक किया जाय। हल्के अभ्यास के कारन यह अवधि कई जन्मों तक जा सकती है। दृढ़ संकल्प के साथ तीव्र वैराग्य और अभ्यास के द्वारा इसी जन्म में भी योग सिद्धि सम्भव है।
2. नैरन्तर्य – बिना किसी व्यवधान के लगातार अभ्यास करते रहना। अभ्यास की अवधि को बढ़ाते रहना तथा हर पल ईश्वर प्राणिधान बनाये रखना। ऋषिकृत ग्रन्थों के स्वाध्याय से शीघ्र सफलता प्राप्त होती है।
3. सत्कार सेवित – ठीक–ठीक आदर और सत्कार पूर्वक, श्रद्धा, भक्ति और उत्साहपूर्वक दीर्घ काल तक निरन्तर सेवन किया हुआ अभ्यास ही योग सिद्धि दिला सकता है बिना सत्कार के नहीं।

अतः योग साधक को घबराना, निराश होना नहीं चाहीए, दीर्घकाल तक निरन्तर सत्कारपूर्वक अभ्यास द्वारा दृढ़ भूमि प्राप्त करनी चाहिए।

वैराग्य – वैराग्य मन की वह अवस्था है जिसमें किसी विशेष वस्तु के प्रति लगाव अथवा राग, द्वेष का पूर्वतया अभाव हो। वैराग्य के संदर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

दृष्टानुश्रविकविषय वितृषस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम।[9]

अर्थात देखे हुए और सुने हुए विषयों में जिसको कोई तृष्णा नही है, ऐसे चित्त की वषीकार संज्ञा (अवस्था) को वरैाग्य कहते है।

1. दृष्ट विषय – इन्द्रियों के विषय जो इस लोक मे दिखाई देते हैं जैसे – धन, स्त्री, पद, ऐश्वर्य आदि विषय।
2. आनुश्रविक विषय – सुने हुये दिव्य विषय सुख, योग सिद्धियां, स्वर्ग के सुख, परलोक के सुख एवं अन्य विषय। इसी क्रम में आगे वर्णन आता है –

तत्परं पुरूषख्यातेर्गुणवैतृष्यम्।[10]

अर्थात वैराग्य वह अवस्था उच्चतम होती है जिसमें पुरूष के ज्ञान के कारण, गुणों की वासना से पूर्ण मुक्ति प्राप्त होती है।
विवेक द्वारा विषय सुख को अनन्त दुःख स्वरूप व बन्धन का कारण समझ कर पूर्णतया अरूचिसंगत होकर संग दोष से निवृत हो जाना ही वरैाग्य है। विषयों के भोगों को भोगने से वह कभी शान्त नहीं होती है बल्कि वह और अधिक बढती चली जाती है। इसलिए विषयों के भोगों में दुख और दोष देखने से उनमे विरक्ति प्राप्त होती है।

योगसूत्र में अभ्यास और वैराग्य का फल –

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।[11]

अर्थात अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त की समस्त हलचलों (वृत्तियों) का निरोध हो जाता है।
जब अभ्यास और वैराग्य द्वारा साधक के चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है। तब साधक अपने अभिष्ट लक्ष्य कैवल्य या मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए जो उत्तम श्रेणी के साधक होते हैं वे अभ्यास और वरैाग्य रुपी साधन को अपनाते हैं।

2. मध्यम श्रेणी के साधक के लिए उपाय (क्रियायोग) –
दूसरे प्रकार के साधक मध्यम श्रेणी के साधक होते हैं। मध्यम श्रेणी साधक वे साधक हैं जो वर्तमान जीवन में योग साधना का प्रारम्भ कर चुके हैं। इनके मन में आत्मबोध की जिज्ञासा जाग्रत हो गई है। जिसको प्राप्त करने के लिए यह निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं। ऐसे योगीयों के लिए क्रियायोग का मार्ग बताया गया है। क्रियायोग में तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आता है। योगसूत्र में क्रियायोग का वर्णन आता है कि –

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।[12]

अर्थात तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान (षरणागति) ये तीनों ही क्रियायोग है।
तप – ''तपो द्वन्द्वसहनम् इति तप'' अर्थात द्वन्द्व को सहन करना ही तप है। द्वन्द्व से अभिप्राय भूख–प्यास, सर्दी–गरमी आदि को समान रूप से सहन करना है। जिस प्रकार स्वर्ण को तपाने से उसकी अशुद्धियां दूर हो जाती है उसी प्रकार साधक के द्वारा द्वन्द्व सहन करने से मन की अशुद्धियां दूर होती है। तप करने से योगी का अपनी इन्द्रियों और मन पर पूर्ण अधिकार होता है। इससे योगी की बुद्धि तीव्र होती है। तप के संदर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

कायेन्द्रियसिद्धिरषुद्धिश्रयातपसः।[13]

अर्थात तप के प्रभाव से अषुद्धि का नाष हो जाता है, तब षरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है।

स्वाध्याय – स्वाध्याय से तात्पर्य है स्वयम् के विषय में जानना, श्रेष्ठ पुस्तकों का अध्ययन करना एवं नित्य ओऽम्, गायत्री आदि का जप करना। स्वाध्याय के संदर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

स्वाध्यायदिष्ट देवतासम्प्रयोग।[14]

अर्थात स्वाध्याय से इष्ट देवता की प्राप्ति होती है।

ईश्वर प्रणिधान – ईश्वर प्रणिधान से तात्पर्य ईश्वर के प्रति अपने सभी कर्मों का पूर्ण समर्पण करना। ईश्वर प्रणिधान के संदर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

समाधिसिद्धिरीष्वरप्रणिधानात्।[15]

अर्थात ईष्वर प्राणिधान से समाधि की सिद्धि होती है।
इसी क्रम में आगे वर्णन आता है कि –

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च।[16]

अर्थात निष्चय ही वह (क्रियायोग) समाधि की सिद्धि करने वाला और आविद्यादि क्लेषों का क्षीण करना वाला है।
जब क्रियायोग द्वारा साधक के आविद्यादि क्लेषों का नाष हो जाता है और समाधि की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। तब साधक अपने अभिष्ट लक्ष्य कैवल्य या मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इसलिए जो मध्यम श्रेणी के साधक होते हैं वे क्रियायोग रुपी साधन को अपनाते हैं।

3. अधम श्रेणी के साधक के लिए उपाय (अष्टांगयोग) –

सबसे अन्त में अधम श्रेणी के योग साधक आते है। जिनका चित्त अभी पूर्ण रूप से संस्कारों से मलिन है किन्तु उनके मन में इस संस्कार रूपी मल से मुक्त करने की प्रबल इच्छा है। अतः योग शास्त्र ऐसे योग साधकों के लिए अष्टागंयोग का उपदेश करता है। 'अष्टांग' शब्द दो शब्दों के मेल से बना है – अष्ट + अंग, जिसका अर्थ है आठ अंगों वाला। अतः अष्टांगयोग वह साधना मार्ग है जिसमें आठ साधनों का वर्णन मिलता है। जिससे साधक शरीर व मन को शुद्धि करके एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है। एकाग्रता प्राप्त कर लेने से वह समाधिस्थ हो जाता है तथा कैवल्य की प्राप्ति कर लेता है। योगसूत्र में अष्टांगयोग का वर्णन आता है कि –

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयो–ऽष्टावंगानि।[17]

अर्थात यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ अंग योग के अंग है।

अष्टांगयोग को दो भागों में विभक्त किया गया है–

1. बहिरंग साधन – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये पाँच बहिरगं साधन है।
2. अंतरंग साधन – धारणा, ध्यान, समाधि ये तीन अन्तरगं साधन है।

बहिरंग साधन –

यम – यह योग का पहला अंग है। 'यमयन्ति निवर्तयन्तीति यमाः' अर्थात् जो अवांछनीय कार्यों में निवृत करता है यम कहलाते हैं। यम का मुख्य अर्थ है– नियन्त्रण अथवा संयम करना अर्थात मन को अधोमुखी पतन से रोकने वाला अनुषासनात्मक गुण। ये निषेधात्मक सद्गुण है अर्थात जिसे नही करना चाहिए जैसे– असत्य नही बोलना आदि। इसे दुष्प्रिवृत्तिनाषक अनुषासन भी कहा जाता है। यम के सन्दर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

अहिंसासत्यास्तेयब्रहाचर्यापरिग्रहा यमाः।[18]

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ये पाँच यम हैं।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पाँचों यमों का पालन करने पर ये महाव्रत हो जाते है। इनसे चित्त की षुद्धि होती है तथा मन को केन्द्रित करने में सहायता मिलती है। संकल्प सिद्धि प्राप्त करके, आत्मबल मिलता है। पाँचों यमों के पालन से विवेकख्याति सिद्ध होती है।

नियम – यह योग का दसूरा अंग है। नियम का तात्पर्य आन्तरिक अनुशासन से है। सामान्य रूप से समाज द्वारा स्वीकृत नियमों के अनुसार आचरण करना ही नियम है। नियम के सन्दर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

षौचसंतोषतपःस्वाध्यायेष्वरप्रणिधानानि नियमाः।[19]

अर्थात् षौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईष्वर प्राणिधान (षरणागति) ये पांच नियम हैं।
नियम के अन्तर्गत वे सभी अभ्यास आते हैं जो चित्त वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाते हैं। यह विधेयात्मक सद्गुण है अर्थात जिसे करना चाहिए जैसे– संतोष, स्वाध्याय आदि करना चाहिए।

आसन – 'आस्यतेऽनेनेति आसनम्' जिस अवस्था में षरीर ठीक से बैठ सके वह आसन है। आसन शब्द् संस्कृत भाषा के 'अस्' धातु से बना है जिनका दो अर्थ है – पहला अर्थ बैठने का स्थान, दूसरा अर्थ शारीरिक अवस्था। तेजबिन्दुपनिषद में आसन के विषय में कहा है – ''सुखिनैव भवेत् यस्मिन्न जस्त्रं ब्रह्मचिन्तम'' अर्थात जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परमब्रह्म का चिन्तन किया जा सके उसे ही आसन समझना चाहिए। आसन के सन्दर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

स्थिरसुखमासनम।[20]

अर्थात स्थिर और सुख पूर्वक बैठना आसन कहलाता है।
इसी क्रम में आगे वर्णन आता है कि –

ततो द्वन्दानभिघातः।[21]

अर्थात तब द्वन्द्वो (शीत–उष्ण) आदि का प्रभाव (कष्ट) नहीं होता है।
दीर्धकाल तक आसनों का अभ्यास करने से षारीरिक और मानसिक स्तर पर होने वाले द्वन्द्व नष्ट हो जाते हैं।

प्राणायाम – प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है – प्राण + आयाम। प्राण का अर्थ होता है जीवनी शक्ति, आयाम के दो अर्थ है पहला– नियन्त्रण करना या राकेना तथा दूसरा लम्बा या विस्तार करना। प्राणवायु का निराधे करना 'प्राणायाम' कहलाता है। आसन के सन्दर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

तस्मिन् सति ष्वासप्रष्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।[22]

अर्थात् उस आसन के सिद्ध हो जाने पर ष्वास एवं प्रष्वास की स्वाभाविक गति का जो विच्छेद (रोकना) है वह प्राणायाम कहा गया है।
इसी क्रम में आगे वर्णन आता है कि –

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।[23]

अर्थात् उस प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान रुपी प्रकाश को आच्छादित (ढ़कने वाला) अविद्या जन्य अज्ञान का पर्दा (आवरणद्ध) क्षीण हो जाता है।

प्रत्याहार – प्रत्याहार दो षब्दों से बना है–प्रति+आहार। प्रति का अर्थ विपरीत और आहार का अर्थ भोजन। इस प्रकार प्रत्याहार का अर्थ हुआ इच्छा के विपरीत भोजन। अर्थात इन्द्रियों को विषय की और अग्रसर होने से रोकना ही प्रत्याहार है। इन्द्रियों का स्वभाव विषय की ओर अग्रसर होना है। हमारे षरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं जो क्रमषः अपने–अपने विषयों को ग्रहण करती हैं। कान (श्रोत) षब्द को, चक्षु रूप को, जिह्वा रस को, घ्राण गन्ध को और त्वचा स्पर्ष को ग्रहण करती है। इन विषयों की आसक्ति को रोकना ही प्रत्याहार है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद के अनुसार– ''चित्तस्यान्तर्मुखी भावः प्रत्याहारस्तु सत्तम्'' अर्थात चित्त का अन्तर्मुखी भाव होना ही प्रत्याहार है। प्रत्याहार के सन्दर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।[24]

अर्थात अपने विषयों के साथ इन्द्रियों का संबंध न होने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण करना अर्थात् चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना प्रत्याहार कहलाता है।
इसी क्रम में आगे वर्णन आता है कि –

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।[25]

अर्थात उस प्रत्याहार से इन्द्रियों की सर्वोत्कृष्टा वश्यता होती है अर्थात प्रत्याहार से इन्द्रियां एकदम वशीभूत हो जाती है।

अंतरंग साधन –

धारणा – चित्त को एक विशेष स्थान पर स्थिर करने का नाम 'धारणा' है। यह वस्तुतः मन की स्थिरता का घोतक है। हमारे सामान्य दैनिक जीवन में विभन्न प्रकार के विचार आते जाते रहते है। दीर्घकाल तक स्थिर रूप से वे नहीं टिक पाते और चित्त की सामान्य एकाग्रता केवल अल्प समय के लिए ही रहती है। इसके विपरीत धारणा में सम्पूर्णतः चित्त की एकाग्रता रहती है। धारणा के सन्दर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

देशबन्धश्चितस्य धारणा।[26]

अर्थात किसी एक स्थान विशेष (देश) में चित्त को बांधाना धारणा कहलाता है।
इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब किसी देश विशेष में चित्त की वृत्ति स्थिर हो जाती है तो वह 'धारणा' कहलाता है। भाष्यकार व्यासदेव स्पष्ट करते है –''नाभिचक्र, हृदयकमल, मस्तक पर स्थित प्रकाषपुंज, नासिकाग्र, जिह्वाग्र इत्यादि प्रदेषों में अथवा बाह्य विषय में चित्त को वृत्ति मात्र से बांध देना एवं एकाग्र करना धारणा है।''

ध्यान – धारणा की उच्च अवस्था ही ध्यान है। ध्यान शब्द की उत्पत्ति 'ध्येचित्तायाम्' धातु से होती है जिसका अर्थ होता है चिन्तन करना। किन्तु यहाँ पर ध्यान का अर्थ चिन्तन करना नहीं अपितु चिन्तन का एकाग्रीकरण अर्थात् चित्त को एक ही लक्ष्य पर स्थिर करना। सामान्यतः ईश्वर या परमात्मा में ही अपना मनोनियोग इस प्रकार करना कि केवल उसमें ही साधक निमग्न हो तथा और अन्य किसी विषय की ओर उसकी वृत्ति आकर्षित न हो 'ध्यान' कहलाता है। योग शास्त्रो के अनुसार जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाये उसी में चित्त का एकाग्र से जाना अर्थात् केवल ध्येय मात्र में एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह लगातार चलना, उसके बीच में किसी दूसरी वृत्ति का नहीं उठना 'ध्यान' कहलाता है। ध्यान के सन्दर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।[27]

अर्थात जहां चित को लगाया जाए उसी में वृति का एकतार चलना ही ध्यान है।
इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिसमें धारणा की गई है उसमें चित्त जिस वृत्ति मात्र से ध्येय में लगता है। वह वृत्ति जब इस प्रकार समान प्रवाह से लगातार उदित होता रहे कि कोई दूसरी वृत्ति बीच में न आये उसे 'ध्यान' कहते है।

समाधि – ध्यान की चरम अवस्था को 'समाधि' कहते हैं। 'समाधि ब्रह्मानि स्थितिः' अर्थात ब्रह्म में चित को स्थिर करने का नाम ही समाधि है। समाधि षब्द का अर्थ सम + धि जहां सम का अर्थ समत्व और धि का अर्थ बुद्धि है। इस प्रकार समाधि मनुष्य की उस मानसिक अवस्था को सूचित करती है जो बुद्धि निर्मल, पापरहित होकर समत्व भाव वाली हो जाती है। अष्टांग योग में समाधि का विशिष्ट एवं महत्वपर्ण स्थान है। साधना की यह चरम अवस्था है। जिसमें समाधि में स्वयं योगी का बाह्य जगत् के साथ संबंध टूट जाता है। यह योग की एक ऐसी दशा है, जिसमें योगी चरमोत्कर्ष की प्राप्ति कर मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है और यही योग साधना का लक्ष्य है। योग शास्त्र में समाधि को मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन बताया गया है। योग भाष्य में इसलिए योग को समाधि कहा गया है यथा ''योगः समाधि''। पातंजलि योगसूत्र में चित्त की वृतियों के निरोध को योग कहा गया है यथा ''योगश्चित्तवृत्ति निरोधः''। समाधि अवस्था में योगी की समस्त प्रकार की चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है। समाधि के सन्दर्भ में योगसूत्र में वर्णन आता है कि –

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।[28]

अर्थात जब (ध्यान में) केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीती होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है, तब वह (ध्यान ही) समाधि हो जाता है।
इस प्रकार से आठो अंगों के अनुष्ठान से अविद्या आदि अषुद्धियों का नाष होता है। जिससे ज्ञान का प्रकाष प्रकाषित होता है। जिसके कारण विवेक ख्याति की प्राप्ति होती है। योगी को सिद्धि की तरफ ध्यान न देकर अपने लक्ष्य 'आत्मदर्षन' पर ध्यान देना चाहिए। यही योगसूत्र की षिक्षा है।

उपसंहार –

इस प्रकार उपर्युक्त योगसूत्र में वर्णित चित्त की वृत्तियों के निरोध के साधन का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि चित्तवृत्तियों के निरोध से साधक अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। यह अपने स्वरूप में अवस्थित होना ही कैवल्य या आत्मदर्षन या मोक्ष है। साधक अपनी योग्यता और रूची के अनुसार इनमें से कोई भी साधन चुन सकता है और अपनी चित्त की वृत्तियों का निरोध कर कैवल्य या आत्मज्ञान की प्राप्ति कर सकता है। जो कि योग साधना का मुख्य लक्ष्य है।

संदर्भ सूत्र –

1. योगसूत्र – 1/2
2. योगसूत्र – 1/3
3. याज्ञवल्क्य स्मृति – 12/5
4. महाभारत – 2/349/65
5. योगसूत्र – 1/6
6. व्यासभाष्य, पृ.1 क्षिप्तं मूढ़ विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चितस्थ भूमयः
7. योगसूत्र – 1/13
8. योगसूत्र – 1/14
9. योगसूत्र – 1/15
10. योगसूत्र – 1/16
11. योगसूत्र – 1/12

12. योगसूत्र – 2/1
13. योगसूत्र – 2/43
14. योगसूत्र – 2/44
15. योगसूत्र – 2/45
16. योगसूत्र – 2/2
17. योगसूत्र – 2/29
18. योगसूत्र – 2/30
19. योगसूत्र – 2/32
20. योगसूत्र – 2/46
21. योगसूत्र – 2/48
22. योगसूत्र – 2/49
23. योगसूत्र – 2/52
24. योगसूत्र – 2/54
25. योगसूत्र – 2/55
26. योगसूत्र – 3/1
27. योगसूत्र – 3/2
28. योगसूत्र – 3/3

संदर्भ ग्रंथसूची –

योग दर्षन – महर्षि पतंजली
पातंजलयोगप्रदीप – स्वामी ओमानंद
योग और योगी – डॉ. अनुजा रावत
योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती
भारतीय दर्षन – डॉ. एच. पी. सिन्हा
भारतीय दर्षन – डॉ. षोभा निगम